प्रधान–सम्पादक
यशदेव शल्य
मुकुंद लाठ

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

उन्मीलन

मानसिक हिन्द स्वराज का वैतालिक
दार्शनिक षाण्मासिक

वर्ष 30, अंक 1
जनवरी-जुलाई, 2016

अनुक्रमणिका

1. गाँधीवाद : समकालीन विमर्शों के आलोक में हिन्द स्वराज की मीमांसा — 5
विश्वनाथ मिश्र

2. आधुनिक विज्ञान में प्रमाण — 56
अरविन्द कुमार राय

3. बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष की अवधारणा — 73
अम्बिकादत्त शर्मा

4. धर्मकीर्ति के प्रत्यक्ष लक्षण की समालोचना — 111
सच्चिदानन्द मिश्र

5. दो समकालीन भारतीय दार्शनिकों का स्मृत्याह्वान
रमेशचन्द्र शाह

बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष की अवधारणा

अम्बिकादत्त शर्मा

1. उपोद्घात

साधारण तौर पर प्रत्यक्ष को बड़ा ही सरल एवं शुद्ध प्रमाण माना जाता है। इसके विषय में यह आम धारणा है कि इन्द्रियों के माध्यम से प्रदत्त वस्तु प्रत्यक्षतः उसी रूप में उपलब्ध होती है, जैसी वह होती है। परन्तु प्रमाणमीमांसीय विचार–सारणी में प्रत्यक्ष के सरल एवं शुद्ध स्वरूप का निर्धारण उतना सरल नहीं, जितना कि समझा जाता है। प्रत्यक्ष विषयक भिन्न–भिन्न अवधारणाओं के बीच यह निश्चित कर पाना कठिन है कि प्रत्यक्ष का कोई सरल और शुद्ध स्वरूप होता भी है अथवा नहीं। वास्तव में प्रत्यक्ष का होना जितना निर्विवाद है उतना ही विवादास्पद यह है कि प्रत्यक्ष किसका और कैसे होता है? यदि प्रत्यक्ष की प्रत्यक्षता, अर्थात् सद्यः एवं साक्षात्कारी ज्ञान, को कम से कम प्रत्यक्ष का सरल और शुद्ध स्वरूप मान भी लिया जाए तो भी साक्षात्कारित्व की आधारभूमि पर प्रत्यक्ष अपनी बहुविध व्याख्या को प्रतिरूद्ध नहीं करता। वस्तुतः प्रत्यक्ष की तथाकथित सरलता एवं शुद्धता ऐन्द्रिक संवेदन की एक ऐसी प्रभावाभिनत स्थिति है कि उसके स्वरूप एवं व्याख्या को आसानी से प्रभावित करते हुए प्रत्यक्ष विषयक एक से अधिक अवधारणाओं को निर्मित करने का लाभ लिया जा सकता है। इसीलिए तो विभिन्न दर्शन–प्रस्थानों के भेद से प्रत्यक्ष की भिन्न–भिन्न अवधारणाएँ विकसित हुई हैं और तब भी सबके सब प्रत्यक्ष के नितान्त वास्तविक स्वरूप को ही उद्घाटित करने का दावा करते हैं। प्रत्यक्ष के ज्ञानमीमांसीय विवेचन की इस तथ्यात्मकता को समायोजित करने के लिए उसे दो प्रकार के मूल्यों के सन्दर्भ में समझना आवश्यक प्रतीत होता है। इसमें पहले प्रकार के मूल्य को 'संज्ञानात्मक' और दूसरे प्रकार के मूल्य के मूल्य को 'अवधारणात्मक' कहा जाना उचित हो सकता है। प्रत्यक्ष को उसका संज्ञानात्मक मूल्य लोकव्यवस्था और लोकप्रतीति की अनुरूपता में निरूपित किये जाने से प्राप्त होता है। परन्तु प्रत्यक्ष अपने संज्ञानात्मक मूल्य से ऊपर अवधारणात्मक मूल्य को एक विशेष प्रकार की तत्त्वमीमांसीय दृष्टि